कृति

अक्षय निधि

लेखक:
प. पू. गणाचार्य विराग सागर जी महाराज

सम्पादक :
सुरेश जैन 'सरल'

प्रकाशक :
श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ
बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग : परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज की
'**स्वर्णिम जन्म जयंती**' के शुभ अवसर पर

कृति : **अक्षय निधि**

लेखक : **परम पूज्य गणाचार्य विराग सागर जी महाराज**

सम्पादक : **सुरेश जैन 'सरल'**

संस्करण : **I, 2007 कुंजवन उदगांव, (महा.) 1000 प्रतियाँ**
II, 2012 जयपुर (राज.) 1000 प्रतियाँ

प्रति : **1000**

पुण्यार्जक : **रोहित सजावड़, बांसवाड़ा (राज.)**

पुनः प्रकाशन हेतु : **10/- रुपये**

प्रकाशक : **श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ,**
बताशा बजाार, भिण्ड (म.प्र.)

आशीर्वाद

बीजांकुर न्याय के समान श्रुतज्ञान की परंपरा और आचार्य परंपरा एक दूसरे के पूरक हैं। **आचरंति यस्माद् व्रतानीत्याचार्यः** ।। 3 ।। **यस्माद सम्यग्ज्ञानादि गुणाधारा हृदय व्रतानि स्वर्गापवर्ग सुखामृत बीजानि भव्या हितार्थ माचरति स आचार्य।** (त. वा. 9/20) जिनसे व्रतों को धारण कर आचरण किया जाता है वे आचार्य हैं। जिन सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि गुणों के आधारभूत महापुरुषों से भव्य जीव स्वर्ग मोक्ष रुप अमृत बीजभूत व्रतों को ग्रहण कर अपने हित के लिए आचरण करते हैं, व्रतों का पालन करते हैं व जो दीक्षा देते हैं वे आचार्य कहलाते हैं।

श्रुतज्ञान की परम्परा को भविष्य के लिए वृद्धिगंत करने में मनीषियों, महापुरुषों, आचार्यों तथा अन्यों का बेजोड़ योगदान रहा और हर प्रकार के ज्ञान के द्वारा सत्साहित्य का प्रतिपादन होता रहा है।

यह भारत भूमि पूर्व की भांति साधु-संतों के अवतरण, निष्क्रमण, आचरण एवं साधना से पवित्र, पावन, पुनीत होती रही है तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल में अनेक भव्य जीव अपनी आत्मा का उद्धार कर रहे हैं। उन्हीं में से मुनिकुंजर, समाधि-सम्राट, अप्रतिम उपसर्ग विजेता, आदर्श तपस्वी, महामुनि, दक्षिण भारत के वयोवृद्ध संत, आचार्य परमेष्ठी श्री 108 आदि सागर जी महाराज अंकलीकर के पट्टाधीश आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज के शिष्य वात्सल्य रत्नाकर आचार्य विमल सागर जी महाराज इन महापुरुषों की उद्धार की प्रणाली आगमोक्त रही है। इन्होंने स्वात्महित के साथ परहित भी किया है तथा अपनी तपोपूत आत्मा से भव्य आत्माओं को हितोपदेश दिया है वह उपदेश ग्रंथरूप में लिपिबद्ध है।

मुनिकुंजर आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर ने भाद्रपद शुक्ला 4 वि. सं. 1923 सन् 1866 को अंकली में जन्म लिया। मगशिर शुक्ला 2 वि. सं. 1970 सन् 1913 को कुंथलगिरि पर दीक्षा ली, ज्येष्ठ शुक्ला 5 वि. सं. 1972 सन् 1915 को जयसिंगपुर में आचार्य पद को ग्रहण किया। फाल्गुन कृष्णा 13 वि. सं. 2000 सन् 1944 को ऊदगांव-कुंजवन में समाधि मरण किया, उन्होंने अपने दीक्षा काल में प्रायश्चित्त विधान (प्राकृत) को भाद्रपद शुक्ला 5 वि. सं. 1972 सन् 1915, जिनधर्म रहस्य (संस्कृत) को मगशिर शुक्ला 2 वि. सं. 1999 सन् 1942, दिव्य देशना (कन्नड़) को मगशिर शुक्ला 11 वि. सं. 1999 सन् 1941, शिवपथ (संस्कृत) को भाद्रपद शुक्ला 4 वि. सं. 2000 सन् 1943, वचनामृत (मराठी) को माघ शुक्ला 14 वि. सं. 2000 सन् 1943, उद्बोधन (कन्नड़) को फाल्गुन शुक्ला 11 वि.सं. 2000 सन् 1943, अंतिम दिव्य देशना (कन्नड़) को फाल्गुन कृष्णा 13 वि. सं. 2001 सन् 1944 में पूर्ण किया।

आचार्य श्री के पट्टाधीश आचार्य महावीर कीर्ति ने वैशाख कृष्णा 9 वि. सं. 1967 सन् 1910 को फिरोजाबाद में जन्म लिया, फाल्गुन शुक्ला 11 वि. सं. 2000 सन् 1943 को ऊदगाँव में दीक्षा ली, आश्विनी शुक्ला 10 वि. सं. 2000 सन्

1943 को ऊदगांव में आचार्य पद ग्रहण किया, माघ कृष्णा 6 वि. सं. 2028 सन् 1972 को महसाना में समाधि प्राप्त की। आपने अपने परंपरागत ज्ञान से अपने दीक्षा काल में प्रायश्चित्त विधान (संस्कृत टीका) को फाल्गुन शुक्ला 13 वि. सं. 2009 सन् 1952, वचनामृत (अंग्रेजी) वर्ड्स ऑफ नेक्टर को मगशिर कृष्णा 10 वि. सं. 2000 सन् 1943 धर्मानन्द श्रावकाचार (हिन्दी) को चैत्र शुक्ला 13 वि.सं. 2000 सन् 1943 प्रबोधाष्टक (संस्कृत स्वोपज्ञ टीका सहित) को फाल्गुन शुक्ला 11 वि. सं. 2004 सन् 1947, शिवपथ (टीका) को मगशिर कृष्णा 10 वि. सं. 2004 सन् 1947, जिनधर्म रहस्य (हिन्दी टीका) को फाल्गुन शुक्ला 13 वि. सं. 2010 सन् 1954, चतुर्विंशति स्तोत्र (संस्कृत) को मगशिर शुक्ला 11 वि.सं. 2018 सन् 1961 को ग्रन्थों की पूर्णता की।

आचार्य विमलसागर जी ने आश्विनी कृष्णा 7 वि. सं. 1972 सन् 1915 कोसमा ग्राम में जन्म लिया, फाल्गुन शुक्ला 13 वि. सं. 2009 सन् 1952 को सोनागिर में दीक्षा ग्रहण की। मगशिर कृष्णा 2 वि.सं. 2018 सन् 1960 को टूंडला में आचार्य पद ग्रहण किया, पौष कृष्णा 12 वि. सं. 2051 सन् 1994 को सम्मेद शिखर में समाधि किए। अपने दीक्षा काल में परंपरागत ज्ञान को जिनवाणी का वैभव (हिन्दी) को कार्तिक शुक्ला 15 वि. सं. 2008 सन् 1951, हे आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) (हिन्दी) को कार्तिक कृष्णा 10 वि. सं. 2039 सन् 1982, संदेश (हिन्दी) को आश्विनी शुक्ला 9 (23 अक्टूबर) को वि. सं. 2050 सन् 1993 में प्रतिपादन कर पूर्ण किया।

संदेश – हमारी आचार्य परम्परा में प्रथम मुनिकुञ्जर आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर हैं। आप आचार्य महावीर कीर्ति जी के दीक्षा गुरु हैं। आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) ने अपना आचार्य पद श्री महावीरकीर्ति जी को दिया है।

जैन समाज में आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) की परम्परा और आचार्य शांतिसागरजी दक्षिण की परम्परा इस युग में निर्बाध चली आ रही है। समाज का कर्त्तव्य है किसी प्रकार का विवाद न करके दोनों आचार्य परम्परा को आगम सम्मत मानकर वात्सल्य से धर्म प्रभावना करें।

"णिग्गंथं पवयण सद्दहदि होदि सम्मत्तं"। अर्थात् निर्ग्रंथ के प्रवचन का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है, सम्यग्दर्शन है। गणाचार्य विराग सागर जी की प्रस्तुत कृति 'अक्षय निधि' नाम की है। जिसका संपादन ज्ञानी सुरेश 'सरल' जी ने किया है। जिसका चिंतन आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर, आचार्य महावीर कीर्ति जी, आचार्य विमल सागर जी करते रहे हैं। उसी परंपरागत चिंतन के साथ प्रवचन हैं। वे शिक्षाप्रद हैं। आत्म कल्याणेच्छु उनका अध्ययन, चिंतन, मनन करके आत्मा को परमात्म स्वरूप में परिणत कर सकते हैं एवं संसार भ्रमण की इति कर सकते हैं। इस दुर्लभ और शाश्वत निधि को प्रगट कर आपने भव्य प्राणियों पर करुणा करके बोधि प्रदान की। इसको जो भी पढ़ेगा, पढ़ायेगा वह केवल ज्योति को प्रकट कर सकेगा।

आचार्य सन्मति सागर

जीवन बिन्दु

(परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज)

पूर्व नाम	:	अरविन्द जैन (टिन्नु)
जन्म	:	2 मई, 1963, शुक्रवार
माता-पिता	:	श्रीमती श्यामादेवी जैन (समाधिस्थ आ. विशांत श्रीमाताजी) श्रीमान् कपूरचन्दजी जैन (संघस्थ प.पू. गणाचार्य 108 विराग सागर जी महाराज)
बहिन	:	श्रीमती मीना जैन, श्रीमती विमला जैन
भाई	:	श्री विजय कुमार, श्री सुरेन्द्र कुमार, बा.ब्र. श्री नरेन्द्र भैयाजी
लौकिक शिक्षा	:	इण्टर, मध्यमा (पथरिया, श्री शान्ति निकेतन, दि. जैन संस्कृत विद्यालय, कटनी) (म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	:	20 फरवरी, 1980 (फाल्गुन शु. 5 सं. 2036 बुढ़ार, शहडोल)
नामकरण	:	पूज्य क्षु. श्री 105 पूर्ण सागर जी महाराज
क्षु. दीक्षा गुरु	:	परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री 108 सन्मति सागरजी महाराज
मुनि दीक्षा	:	9 दिसम्बर, 1983 (मगसर शु. 5 वि.सं. 2040) औरंगाबाद (महा.)
नामकरण	:	प.पू. मुनिश्री विराग सागर जी महाराज

मुनि दीक्षा गुरु	:	प.पू. आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज
आचार्य पद	:	8 नवम्बर, 1992 (कार्तिक शु. 13 वि.सं. 2049 रविवार, द्रोणगिरि
संयम सृजन	:	आचार्य-8, मुनि 51, आर्यिका-47, ऐलक-5, क्षुल्लक 30, क्षुल्लिका-20, तथा ब्रह्मचारी भाई-बहिनें-50 कुल 161
समाधिसल्लेखनाएँ	:	21
चातुर्मास	:	1980 से 2011 तक क्रमशः दुर्ग (छत्तीसगढ़), कारंजा (लाड) (महा.), कारंजा (लाड) (महा.), नागपुर (महा.), भावनगर (गुजरात), पांचवा (राज.), निमाज (राज.), जयपुर (राज.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.) टीकमगढ़ (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), द्रोणगिरि (म.प्र.), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), बीना (म.प्र.), ललितपुर (म.प्र.), मढ़ियाजी (जबलपुर), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र), भिण्ड (म.प्र) शिखरजी (झारखण्ड), गया (बिहार), श्रेयांसगिरी (म.प्र.), भिलाई (छत्तीसगढ़), कारंजा (लाड) (महा.) मूडबिद्री (कर्ना.) मेलचित्तामूर (तमिलनाडू) उदगाँव (महा.), मुम्बई (महा.), गाँधीनगर (गुजरात), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.)

श्रद्धा सुमन

''**गागर में सागर**'' को भरना जितना कठिन है, उससे भी कहीं अधिक कठिन है गुरुवर के गुणों का बखान करना। आगम, अध्यात्म और सिद्धान्त की त्रिवेणी का संगम जहाँ है, वह महासागर अपने अंतस में समाये है, अनेकानेक रत्नों को, जिसकी विशालता का कथन इस लघु लेखनी से संभव नहीं। जिनकी लेखनी आगमानुसार, पूर्वापर विरोध रहित तथा पाठक की भावभासना के अनुरुप है, जिसमें एक ओर रस, अलंकार व काव्य लालित्य दृष्टिंगत होता है तो दूसरी ओर सहजता, सरलता व प्राकृतिक स्वाभाविकता भी। जो प्राणीमात्र के दु:खों का अन्तरङ्ग से वेदन करते हैं तथा सत्य की कसौटी पर कसकर अपनी बात रखते हैं ऐसे अद्‌भुत प्रज्ञाधारी, प्रकाण्ड पाण्डित्य के धनी, आगम निष्ठ, दार्शनिक दृष्टिकोण व वैज्ञानिक विचारों को धारण करने वाले परम पूज्य गणाचार्य गुरुवर विराग सागर जी के अन्तस से उद्‌घाटित चिन्तनों का सम्पादन किया है, सुरेश जी जैन 'सरल' ने। सत्य ही है- जैसा नाम वैसा काम, ऐसे ऋजु स्वभावी 'सरल' जी ने गुरुवर की सेवा व जिनवाणी की भक्ति का जो अपूर्व अवसर पाया है वह अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। वे इसी तरह श्रुत व गुरु सेवा में संलग्न रहकर पुण्योपार्जन करें यही शुभभावनाएँ भाती हूँ।

अंत में गुरुवर के राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव पर प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि-

गुरुवर देखे चिरबसंत, आरोग्य मिले हरदम,
यही भावना भाती है, भक्ति की सरगम।
रत्नत्रय में वृद्धि होवे, हम भी पथ पर संग चलें,
रजत मुनि दीक्षा पर गुरुवर, यही भावना व्यक्त करें।।

इसी भावना के साथ त्रय भक्ति पूर्वक गुरु चरणों में कोटिश: नमोऽस्तु-3

गुरु पद गामिनी
आर्यिका विशिष्ट श्री माता जी

संपादकीय.......✍

संतों के ग्रंथ संपादित नहीं किये जाते, वे स्वयं प्रकाशवान होते हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे पूज्य गुरुदेव के छत्तीस लघु कहे जाने वाले "महान निबंधों" के संपादन का उत्तरदायित्व सौंपा गया। यह कार्य मैं कभी नहीं कर पाता यदि मेरे पार्श्व में पूज्य आर्यिका श्री 105 विशिष्ट श्री माता जी का गरिमामय सहयोग न होता। इस लघु ग्रंथ की प्रेरणा बिंदु वे ही हैं।

वर्तमान में पाठक, समाज के समक्ष अनेक संतों ने रत्न जड़ित थालियों में छप्पन प्रकार के आहार प्रस्तुत किये हैं किंतु परम पूज्य गणाचार्य जी ने जो आहार इस थाली के माध्यम से दिया है वह ध्यान देने लायक है। न थाली रत्न जड़ित है न आहार में छप्पन व्यंजन हैं फिर भी वह अब तक के मानसिक आहारों में, अपनी सात्विकता और गरिमा के कारण अति उच्च स्थान पाता है। उनका चिंतन इस पुस्तक का प्राण तत्त्व बन गया है भाषा अनोखी, विषय चिरपरिचित फिर भी सब कुछ नया, सब कुछ मौलिक।

पूज्य गणाचार्य जी की औपचारिक सराहना की श्रृंखला तोड़ते हुए मैं इतना ही कहूँगा कि उनकी विद्वतता और चर्या की सच्ची झलक इन्हीं लेखों में समायी हुई है, पाठक स्वतः अनुभव करेंगे।

गुरु चरण चंचरीक
सुरेश जैन सरल

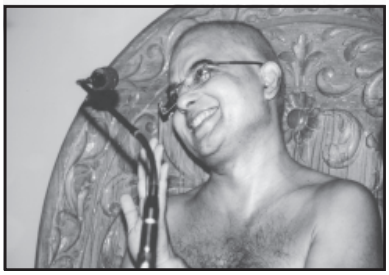

1.

आत्म हित कहाँ ?

यह हमारे सद्ज्ञान का प्रतीक है कि हम भगवान के उपदेश सुनते हैं। परंतु यह अज्ञान का प्रतीक है कि उन्हें इस कान से सुना और उससे निकाल दिया। कुछ जानने-समझने का प्रयास ही नहीं किया। तब लगा कि हम सरोवर के किनारे तक तो गये किन्तु जल तक नहीं पहुँच पाये। अरे, जब जल को हृदयंगम नहीं किया तो प्यास कैसे बुझेगी? मंदिर में मूर्ति को तो पकड़े रहे किन्तु उसके उपदेश जीवन में नहीं उतारे तब भला हमारा हित कैसे हो सकेगा? सो भगवान का दर्शन हमारे भीतर कैसे रूकेगा? सो भगवान की मूर्ति को पकड़ें, पूजें किन्तु भगवान के उपदेशों पर भी ध्यान दें, अन्यथा आत्महित कैसे हो पायेगा।

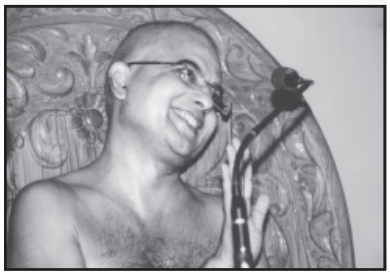

2.

मार्ग अनेक : सत्य एक

संसार के सभी महापुरुष, सभी धर्म, सभी सम्प्रदाय अपने-अपने मतानुकूल सत्य-मार्ग की चर्चा करते हैं। सत्यमार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। मगर महावीर कहते हैं- सत्य के मार्ग अनेक हो सकते हैं, किन्तु सत्य एक है। सत्य अनेक नहीं हो सकते। अरे, सत्य के कथन की शैली/भाषा/पद्धति/कथन/प्रणाली पृथक् हो सकती है, सत्य नहीं। वह तो एक सिद्धांत है जो शाश्वत है, उत्तम है। हमारा अज्ञान हमें सत्य के विभिन्न मार्गों पर भटकाता रहता है, हम सत्य के समीप तक नहीं पहुँच पाते। जिन्हें सत्य का स्वरूप समझ में आ जाता है वे ज्ञानमय हो जाते हैं, उनका हृदय विशाल हो जाता है। भाई के भीतर भी भगवान नजर आता है।

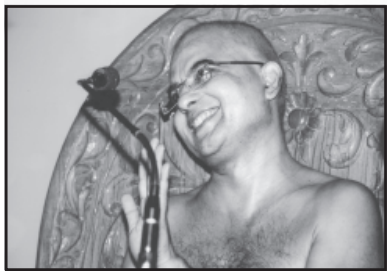

3.

प्रतीक्षा सही की करें

प्रतीक्षा करने की आदत पड़ गई है सभ्य समाज की। मंच पर अनेक जन बैठे हैं, सामने श्रोतागण उपस्थित हैं किन्तु प्रतीक्षा चल रही है मुख्य अतिथि की। कोई कार मंच की ओर आती है तो लोग खड़े हो जाते हैं मुख्य अतिथि की प्रतीक्षा में। पर उसमें कोई ओर निकलता है। प्रतीक्षा पुनः चालू हो जाती है। अन्य दृश्य याद आता है- स्टेशन पर ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तभी एक आहट आती है, लोग ट्रेन को आते देखते हैं, तुरंत खड़े हो जाते हैं। पर वह तो मालगाड़ी निकलती है, प्रतीक्षा पुनः चालू। काश! ऐसी प्रतीक्षा प्रभु की देशना सुनने की हो जाती तो जीवन धन्य हो जाता। प्रतीक्षा सफल हो जाती। आप मुख्य अतिथि बनने का गौरव प्राप्त करते और सही ट्रेन पकड़ कर मोक्षमार्ग की दिशा पा जाते। भो! सही प्रतीक्षा करो। 'सही' की प्रतीक्षा करो।

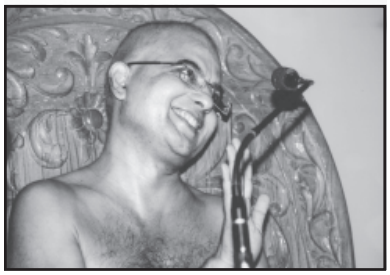

4.

गुरु ज्ञान और मान

जिस धर्म-सभा का विस्तार इतना अधिक हो, उस सभा का महानायक कैसा होगा? जिस गुरु का शिष्य इतना प्रभावी है, उसका गुरु कैसा होगा? जिसका अनुशासन इतना दृढ़ है, उसका अनुशासक कैसा होगा? अनेक प्रश्न हो सकते हैं। सभी का उत्तर एक हो न हो, पर सभी के समाधान के पार्श्व में एक ही शक्ति है। वह है गुरु। यों गुरु भी कईयक होते हैं परन्तु परम गुरु केवल तीर्थंकर होते हैं। अतः चलो, तीर्थंकर के समवशरण की कल्पना अपने मानस में ले आवें। मानस्तंभ के दर्शन करें और अपने छुद्र मान को गलावें। गौतम गणधर के सूत्र अपनावें। धर्म जानने के लिए 'ज्ञान का मान' जलावें।

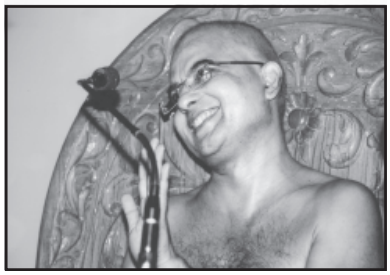

5.

गुरु एक शाश्वत सहारा

वह सबके लिए है और सबका है अतः हमारे देश में गुरु का महत्व सूर्य की तरह है। गुरु मोक्षपथ पर चलाने के लिए पहले दिशा देता है, फिर पाथेय। गुरु शिष्य के अंतरंग से अंधकार हटाकर प्रकाश भरता है। मोहांधकार के बदले देता है वात्सल्योजास। गुरु एक सिद्ध मंत्र है जो नाना प्रकार की विद्यायें देता है। गुरु धर्म सरिता का उद्‌गम स्थान है। बेसहारों का सहारा। अंगुली थामकर माता-पिता की तरह मंजिल तक पहुँचाता है। असहाय्य का सहाय्य वह दीनों-अनाथों का नाथ है, निधि है, बीमार को औषधि है। अंधे को आँख है, अनाधार को आधार। इसलिये गुरु के बिना जीवन हो जाता है बेकार। आगम में चर्चा है- 'जिसका गुरु नहीं, उसका जीवन शुरु नहीं।' गुरु पूर्णिमा पर इतना ध्यान रखना कि गुरु चुनना हो तो कृतज्ञ बनना। विघ्नी-कृतघ्नी नहीं।

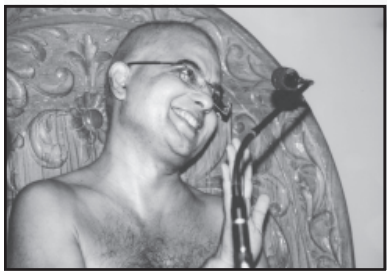

6.

ध्यान तेरस कब ?

जैन धर्म क्षत्रियों का धर्म था जो अड़िग रह कर पालन करते थे। तन पर उपसर्ग सहते थे और आत्मा पर परिषह। क्षत्रिय कहते थे- धर्म करते चलो, धन आता रहेगा। न भी आ पाये तो हाथ में धर्म तो रहेगा। आत्म-साधना की उत्कृष्टता जीवित रहना चाहिए। परन्तु धर्म जब से हमारे आपके हाथ आया है, कुछ लोगों ने उसे विरूप कर दिया है। धर्म को तराजू के पलड़ों पर तौलना शुरु कर दिया है। अब धन तेरस पर नये बर्तन लाकर पूजा में रखे जाने लगे हैं। हमने अपने साथ-साथ अपने धर्म को भी बर्तन में कैद कर दिया है। हमें महावीर को समझने के लिए महावीर की शिक्षा तक जाना होगा। धन तेरस और दीवाली को बर्तन, वस्तु ध न की नहीं, महावीर के आदर्शों को पूजना होगा। धनतेरस को ध्यान तेरस मानना होगा। यह रूढ़िवाद नहीं है। यह है महावीरवाद। योग निरोध धारण करना और ज्ञानपूर्वक क्रिया करना। जो इतना करता है, वह क्षत्रिय या बनिया से परे, उत्तम श्रावक कहलाता है। उठो, श्रावक बनो।

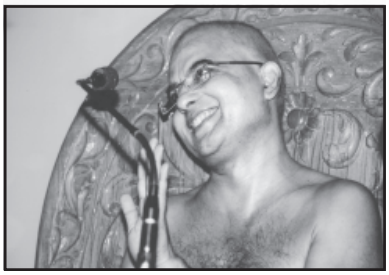

7.

पुण्य-दिवस का पुण्य

मुकुट सप्तमी माने तीर्थंकर-भगवान पार्श्वप्रभु का स्मृति दिवस। स्वाभाविक है कि यह दिवस सभी के लिये मंगलकारी है। धर्माराधकों और धर्म पिपासुओं के लिए तो प्रभावनाकारी भी है। उनका उत्साह बढ़ता है और वे कल्याणमार्ग की यात्रा में दृढ़ रहते हैं। सुना होगा- धर्म के कार्यों हेतु जिनमें उत्साह नहीं उमड़ता उन्हें धर्म और स्मृति दिवस कुछ कम ही फलदायी सिद्ध होते हैं। वे भीड़ में हँसते हैं, एकांत में रोते हैं। तब ध्यान आया कि धर्मात्मा का परिचय तिलक, माला और पीताम्बर से नहीं, अंतरंग-करुणा से होता है। करुणा-धारी, विनम्र ज्ञानी ही महापुरुष होता है। उसका प्रभु भले ही हजारों वर्ष पूर्व मोक्ष चला गया हो, वह कभी नहीं भुलाया जा सकता। पुण्य दिवस याद कराता है कि प्रभु के मार्ग पर पैर जमें हैं या नहीं, मन के तारों में स्तवन रमें हैं या नहीं।

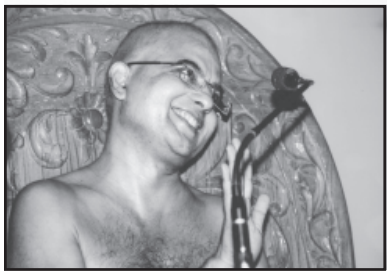

8.

विद्या पात्र के लिए

साधना करने के लक्ष्य से गुरुकुल पहुँचे साधक को परीक्षा के बाद ही पात्र ठहराया जाता है। जिस तरह हाट-बाजार से कुछ वस्तु खरीदने के पूर्व उसकी पड़ताल कर ली जाती है। यही महावीर की परम्परा है- पात्र को ही शिक्षा-दीक्षा और ज्ञान दिया जाता है। ज्ञान या उपदेश प्रसाद नहीं होते कि चाहे जिसके हाथ पर धर दो। ज्ञान प्रदान करना सहज नहीं है, गुरु सदा ध्यान रखते हैं कि अपात्र की झोली में विद्या दान उचित नहीं होता। अपात्र विद्या/शक्ति का दुरुपयोग करता है, अर्थ का अनर्थ करता है, इसीलिए किसी देश के, रक्षा के साधन, बम मिसाइल्स आदि का प्रभार किसी अपराधी या संदिग्ध- मनोधारणा वाले अधिकारी के हाथ में नहीं दिये जाते वे तो सेनापति या राष्ट्रपति के नियंत्रण में ही रखे जाते हैं। इसलिए कहा है कि वह गुरु, गुरु नहीं जो अपात्र को विद्या-दान देता है।

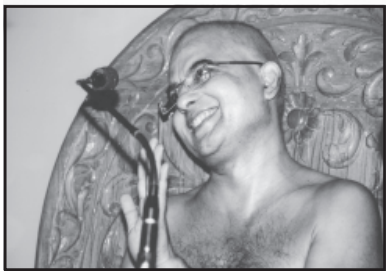

9.

ज्ञानपूर्ण चर्या है- चारित्र

धर्म का बीज ज्ञान है। वह ज्ञान रूपी बीज से उत्पन्न होता है। जहाँ ज्ञान है, वहाँ धर्म है। जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ ध र्म कैसे हो सकता है? आगम में चारित्र को भी धर्म का मूल कहा गया है। किन्तु किस चारित्र को? ज्ञानपूर्वक की गई क्रियाओं से निर्मित चारित्र को। आचार्यों ने पहले ही आगाह कर दिया है कि धर्ममय होना है तो पहले दर्शन सम्भालो, फिर ज्ञान और फिर चारित्र। सारांश यह कि बिना दर्शन और ज्ञान के; चारित्र नहीं बन पाता, तो धर्म कैसे सधेगा? अत: आदमी के जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान से सभी कुछ सध जाता है- दर्शन, चारित्र, धर्म। सब कुछ। जिस आदमी में ज्ञान नहीं है वह बहुत कुछ श्रम/कार्य/क्रियाएँ करने के पश्चात् भी, जहाँ का तहाँ डला रह जाता है। मोक्षमार्ग पर नहीं बढ़ पाता। जीवन में सुख-शांति नहीं ला पाता। अत: पहले ज्ञानी बनो; ध्यानी स्वयमेव बन जाओगे। ज्ञानी परिस्थितियों के समक्ष झुकता नहीं; उनका सामना करता है।

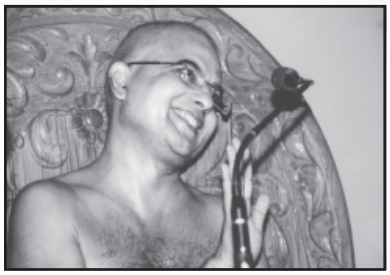

10.

ज्ञानार्जन

प्यास लगती है तब प्यासे को कुएँ के पास जाना होता है। जब कुएँ नहीं थे, तब कुएँ खोदने पड़ते थे। कुआँ खोदने वालों को श्रमदान और समयदान के साथ-साथ, अर्थदान और साधन-दान भी करने होते थे। इतने के ही बाद भी प्यासा कुएँ से बंधता था, कुआँ प्यासे से नहीं। बँध जाने से यह लाभ था कि प्यासा, प्यास तृप्त करके ही लौटता था। यही स्थिति ज्ञानार्थी/विद्यार्थी की बनना चाहिए। ज्ञान चाहिए तो ज्ञानी से बंधो। निश्छल भाव से बंधो। श्रम करो। समय दो। उपहार दो। सेवा करो और ज्ञानार्जन करो। जो व्यक्ति ज्ञान का प्यासा है, वह दान, त्याग और विनय के भाव धारण कर ज्ञान प्राप्त कर ही लौटता है। स्वतः ज्ञानी बन जाता है। दीपक से दीपक जल जाता है। हर व्यक्ति को ज्ञान की प्यास लगे। ज्ञानोपलब्धि तक लगी रहे। सच, सारा संसार ज्ञानमय हो उठेगा।

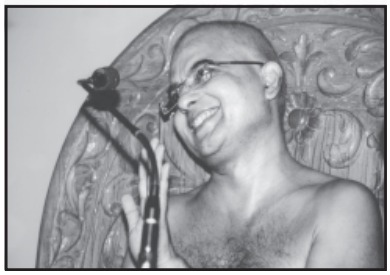

11.

समारोह आत्म स्वाधीनता का

स्वतंत्रता-दिवस, स्वाधीनता प्राप्ति प्रसंग याद दिलाता है और स्वतंत्रता से रहने का पाठ पढ़ाता है। वर्तमान परिवेश में स्वतंत्रता का क्या अर्थ है? यह कि व्यक्ति सीमा में रहे, मर्यादा का उल्लंघन न करे और निर्भय तथा निराश्रित होकर जीवन-यापन करे। आदमी जब तक अपने कर्त्तव्य पथ पर रहता है, तभी तक वह स्वतंत्र माना जाता है। कर्त्तव्य-च्युत व्यक्ति तो पराधीन हो जाता है। यही हाल आपकी आत्मा का है। यद्यपि उसका स्वभाव स्वतंत्र रहना ही है किन्तु वह कर्म-बंध के कारण भव-भवों तक पापों से जकड़ी रहती है। पराधीन रहती है। इस भव से उसे स्वतंत्र बनाना है, कर्म-बेड़ी को हटाना है। कैसे? दर्शन-ज्ञान-चारित्र का प्रकाश प्राप्त कर, कर्मों को जलाना है। कर्म-क्षय करना ही आत्मा का 'स्वतंत्रता-दिवस समारोह' कहलाता है। इसका सौभाग्य ज्ञानी को ही मिल पाता है।

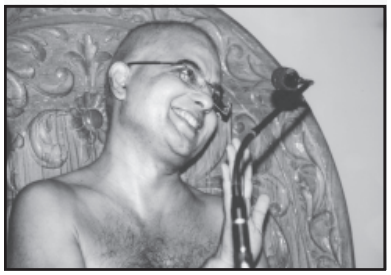

12.

भीतर के अंग्रेज काटे कषाय

आगम कहता है- व्यर्थ-आकांक्षाओं से मुक्त हो जाना, स्वाधीनता है। अनर्गल प्रवृत्तियों का त्याग ही स्वतंत्रता है। ये व्यर्थ-आकांक्षायें और अनर्गल-प्रवृत्तियाँ आत्मा में काँटों की तरह चुभी हुई हैं। इन्हें निकाल फेंकने के लिए जीवन में संयम-नियम धारण करना जरूरी है। जो आम-आदमी की मजबूरी है। देश में स्वतंत्रता पाने के लिए जिस तरह अंग्रेजों को भगाया था। 'क्विट-इंडिया' का नारा लगाया था। उसी तरह हमें आत्मा के स्वातंत्र्य के लिए कषायों को भगाना होगा। काँटे से काँटा हटाना होगा। संयम और नियम भी काँटे ही तो हैं जो सहज ही नहीं धारण किये जाते। फूल जैसे सुखद होते तो सभी जन धारण कर मुस्कराते। अतः चलो, संयम रूपी कटक से आकांक्षा रूपी कांटों को निकालें। 'देख, भाल, चल' का आदर्श पालें।

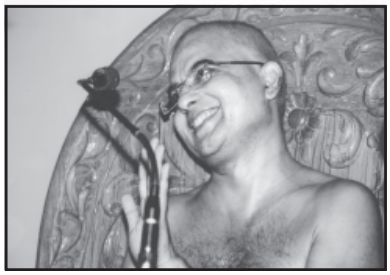

13.

हम कहीं है पशु के दुश्मन

तुमने अंग्रेजों को भगाकर स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। तुम धन्य हो। मगर इस देश के पशु भी स्वतंत्रता चाहते हैं। वे स्वातंत्र्य के पूर्ण- अधिकारी हैं भी। मगर वे तुम्हें नहीं भगा पा रहे हैं। तुम्हारे भागने में उनकी स्वतंत्रता नहीं है। तुम्हारे भाव/विचार बदल जाने से शायद वे स्वतंत्रता का सुख पा जायें। मगर तुम अपनी राजनीति से प्रेरित हो। तुम्हें सत्ता, कुर्सी, यश और धन चाहिए। अतः तुम कत्लखाने बंद कराने में मजबूर हो जाते हो। यों हर चुनाव में तुम वादा करते हो कि पशु-क्रूरता/पशुवध समाप्त करोगे। हर प्राणी को उसका अधिकार दोगे। परंतु चुनाव जीत जाने के बाद, तुम पशु तो पशु, आदमियों को भी कटवाने लगते हो। मन में हत्यारे, मंच पर शरीफ दिखते हो। सत्ताओं की वादाखिलाफी के कारण इस देश का पशु अपने आप मर जाता है। तुम्हारा घर भर जाता है। सच, तब लगा, तुम पशु से भी गये-बीते हो। धर्म से रीते हो। ईमान खाते हो, ईमान पीते हो।

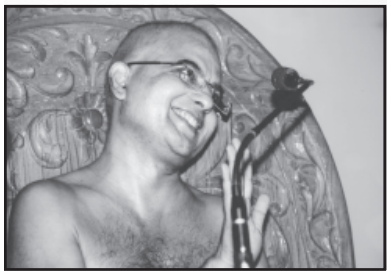

14.

हम स्वतंत्र आत्मा गुलाम

यह आत्मा की चर्चा नहीं है, स्वतंत्रता की है। आत्मा एक स्वतंत्र-शक्ति है। पर तुम्हारे दुलमुल-चारित्र के कारण वह परतंत्र हो गई है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र के पथ पर आई कमजोरी/शिथिलता के कारण पराधीन हो गई है। पुद्गल-पदार्थों के प्रति तुम्हारा आकर्षण, तुम्हें मोह और लोभ की बेडियाँ प्राप्त कराता है। उन बेड़ियों से तुम्हें नहीं, तुम्हारी आत्मा को बंधक बनाता है। आत्मा गुलामी की बेड़ियाँ पहिन कर रह जाती है। गुलाम बन जाती है। 'सुनो भारत वर्ष के गुलाम हो जाने का मुख्य कारण था- 'राजाओं और जमीनदारों की फूट।' तुम्हारी आत्मा के गुलाम बन जाने का कारण है संयमों-नियमों में पनपी फूट। अतः ध्यान दो तो यह बात मंत्र हो जावेगी। संयम-नियम की एकता से आत्मा स्वतंत्र हो जावेगी। फिर नहीं बढ़ेंगे कर्म बंधन। आपका जीवन हो जावेगा चंदन।

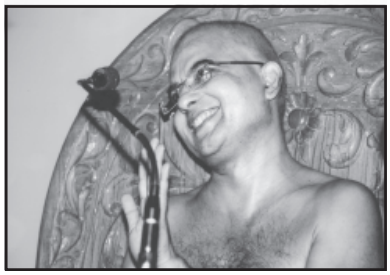

15.

सत्ता में प्रवेश करें सदाचारी

अब तक भारत स्वतंत्र है तो कहना होता है कि यह प्रजा ही राजा है। प्रजा के बहुमत का लाभ पाकर ही कोई व्यक्ति सत्ता में आ सकता है। अतः प्रजा को चुनाव के समय सदाचारी व्यक्ति का चयन करना चाहिए। अपने मताधिकार का सही उपयोग करना चाहिए। सदाचारी व्यक्तित्व जब सत्ता में आते हैं। अहिंसा, पशु-संरक्षण और शाकाहार के भाग्य खिल जाते हैं। अनाचार, अनीति और अन्याय विदा ले जाते हैं। देशवासियों को और पशु-पक्षियों तक को स्वतंत्रता का वातावरण मिल जाता है। स्वतंत्र देश का प्राण-प्राण स्वतंत्रता का स्वाद पा जाता है। फिर अहिंसा, दया, करुणा नारों तक सीमित नहीं रहती। वे आचरण की गंगा में समाहित रहती है। सभी प्राण पा जाते हैं जीने का आधार। महावीर का सिद्धान्त 'जियो और जीने दो' पा जाता है श्रृंगार।

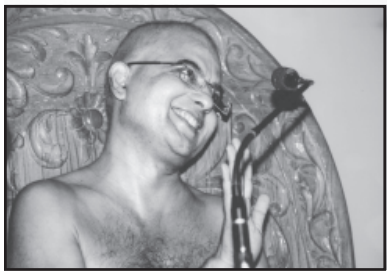

16.

किस्म किस्म के जोड़

दो और दो का योग चार होता है। योग माने जोड़। वर्षायोग भी एक सुंदर जोड़ है। एक और एक का योग है। एक होती है- साधु संस्था और एक होता है- श्रावक वर्ग। साधु और श्रावक का योग/जोड़ बन जाता है वर्षायोग। वर्षाकाल में यदि मुनि और श्रावक अलग-अलग रहेंगे तो धर्म के नद कैसे बहेंगे? सुनो, नदी के दो किनारों की तरह हैं ये साधु और श्रावक। ये दिखते हैं पृथक-पृथक। परन्तु इनके बीच से सदा धर्म रूपी सलिल बहता रहता है। श्रावक सुनता है, साधु 'कहता' है। यह 'श्रवण' और 'कथन' की परम्परा भी एक जोड़ है। धर्ममय वातावरण बनाने में बेजोड़ है। जहाँ साधु-समाज का प्रवास नहीं होता। वहाँ सु-संस्कारों का प्रकाश नहीं होता। अतः वर्षाकाल हो, चाहे शीतकाल या ग्रीष्मकाल। श्रावकगण न हो पावें अलाल। सदा रखें धर्म का ख्याल। भावना भाते रहें। हे तीर्थंकर देव! आप तो आने से रहे, साधुगण ही आते रहें।

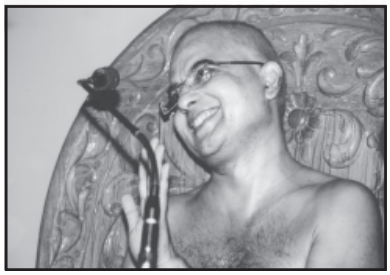

17.

वर्षायोग का संगीत

सुनो, वर्षायोग का सरोकार जितना साधु से है, उससे अधिक श्रावक से होता है। क्योंकि यह उनके धर्म के विकास की आधारशिला होता है। यही वह स्वर्णिम-समय है जब श्रावक मुनि के करीब आता है। दूरियाँ मिटाता है। जो श्रावक सामीप्य/सानिध्य पा जाता है, वह आसन्न दोषों/पापों से अवकाश पा जाता है। समाज के लोग बतलाते हैं कि चार माह करते हैं मुनियों की वैयावृत्ति फिर आठ माह कमाते हैं। श्रम और सूझबूझ से 'जो धन' पाते हैं उसे 'दान-तीर्थ' प्रवर्तित करने में लगाते हैं। सच, वर्षायोग बन जाता है वह संगीत, जिसमें भक्त-जन गाते हैं गुरु-गुण के गीत। कभी-कभी इस शुभ कार्य का निमित्त माँ या पत्नी बनती है जो पुत्र या पति को सन्मार्ग तक पहुँचाती है। उन सभी का श्रम और समर्पण तब सफल हो जाता है, जब एक प्रज्ज्वलित दीप, नगर के सौ बुझे दीपकों को जला जाता है।

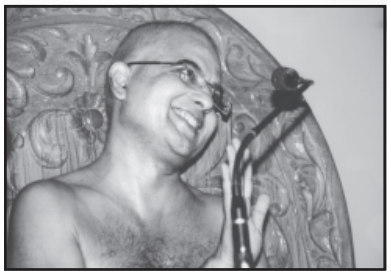

18.

मन में है आस गुरुवर का चातुर्मास

चातुर्मास के विषय में यह कथन अलबेला है कि यह, चार मास की अवधि, गुरु उपासना और भगवत्-आराधना की बेला है। सच यह है कि एक महान दुकान। जिसमें मिलता है- मनचाहा पकवान। चाहे जितने तप, नियम, संयम, व्रत माँगो, मिल जायेंगे। स्टॉक में कमी नहीं पायेंगे। सच, यहाँ कुछ भी नहीं होता बेमन है। क्योंकि वर्षायोग पुण्य की कमाई का सीजन है। यहाँ आदमी की माया और काया का सच्चा सदुपयोग होता है। इंद्रिय-निग्रह का योग होता है। जब भक्तगण चातुर्मास के लिये श्रीफल चढ़ाते हैं। उसी क्षण अपने हाथों से श्रद्धा और समर्पण के पुष्प चढ़ाते हैं। उनके अंतस् की भक्ति जाग जाती है। उनकी हर क्रिया गुरु के अनुशासन की सहयोगी बन जाती है। ध र्म-वर्षा में वृद्धि कर जाती है। वर्षायोग के बाद, हर भक्त करता है आस। अगले साल फिर हो किसी निर्ग्रन्थ-गुरु का चातुर्मास।

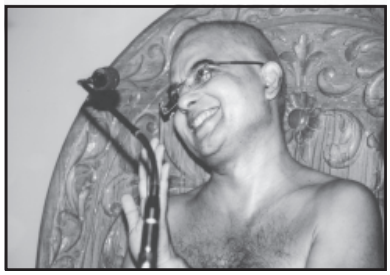

19.

क्षमा गुण क्यों है पूज्य ?

'**क्ष**मा' को परिभाषित न करते रहो। उसे अंगीकार करो। क्षमा; शब्द सुनते ही आत्मा आनंद और हर्ष से भर जाती है। गाँठे खुल जाती हैं, वक्रता भाग जाती है। वक्रता मन की; वक्रता विचारों की। क्षमा आत्मा का गुण है; मात्र इसी से सज्जनता पहिचानी जाती है। आप्त-पुरुषों से प्राप्त-वरदान-क्षमा; महापुरुषों का आभूषण है। जबकि क्रोध आत्मा का दूषण है। पानी धारण कर लेने के बाद जिस तरह मिट्टी कोमल हो जाती है। क्षमा धारण करने से समग्र मानवता मुलायम हो जाती है। देखो, ताड़ के जिस वृक्ष को समय पर झुकना नहीं आता, उसे टूटना पड़ता है। जो घास/पौधे आँधी के समक्ष झुक जाते हैं; वहाँ आँधी को ही टूटना पड़ता है। क्षमा माँगना और क्षमा करना बहादुरों का काम है। क्षमा, भगवान महावीर का, छठवाँ नाम है। क्षमा गुण पूजें, क्षमा के गीत गायें। चलो अपनी चर्या को क्षमामय बनायें।

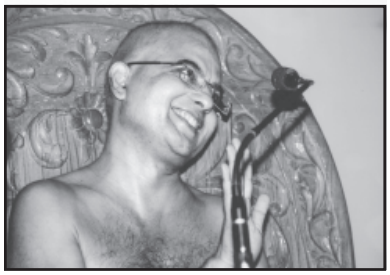

20.

मानवता को नष्ट करता है क्रोध

क्रोध नहीं है आत्मा का गुन। यह तो है आत्मा में लगा घुन। क्रोध-अशांति, दु:ख, पीड़ा का जनक है। कषायों में प्रमुख है। क्रोध का जन्म अज्ञानता से होता है। जो मोम सा मुलायम नहीं, पत्थर सा कठोर होता है। इसमें कभी ऋजुता नहीं आती। इसीलिए इसकी उपमा अनंतानुबंधी-कषाय से है की जाती। क्रोध के उच्च ठूँठ से अच्छा माना गया है घास को। जो जीवन देती है क्षमा के विश्वास को। समय पर झुकती है; समय-सम्राट से रूँदती है, गलीचे सी है बिछ जाती। किन्तु क्षमा की भावना नहीं विसराती। क्षमा-कौरवों के आगे विनीत पांडव है। जबकि क्रोध-जीवन नष्ट करने वाला तांडव है। इसलिए चलो, क्रोध को आत्मा से खदेड़ें, क्षमा को स्थापित करें। धर्म का पाठ तो याद कर लिया, अब उसे आचरण के माध्यम से ज्ञापित करें।

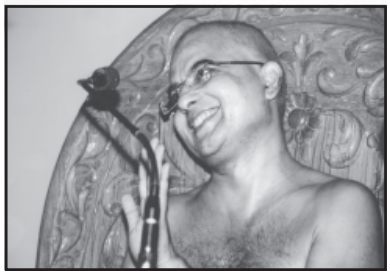

21.

मान का पीलिया

जिन्हें जीने की सुधि नहीं है। वे धार्मिक नहीं है। उनके मन में जब तक धर्म नहीं हो आता। उन्हें गुरु तो क्या, परमात्मा का नाम भी नहीं सुहाता। काश! उनके मन में यह उक्ति आ जावें- 'गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।' तो धर्म का आगमन हो जावे। मगर उन्हें क्या कहोंगे जिन्हें अधर्म रूपी पीलिया हो जाता है। उन्हें तो छांछ और नवनीत भी पीला नजर आता है। यह सत्य है कि विद्वान-पिता का पुत्र भी विद्वान होता है; विद्वान-गुरु का शिष्य भी विद्वान होता है। पर वे नहीं मानते जिन्हें मान का पीलिया होता है। स्पष्ट है- जिस मन में धर्म नहीं; वहाँ न्याय भी न होगा। अधार्मिक के ऊपर केवल धार्मिकता का बाना होगा। ऐसी स्थिति में सज्जनों को एक सिद्धान्त सिद्ध होता है सच्चा। कि हम अच्छे तो जग अच्छा।

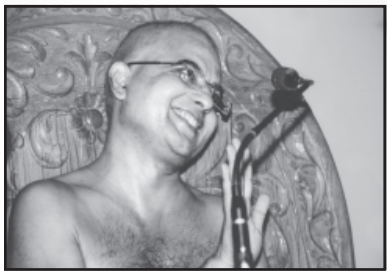

22.

धर्म एक रूप अनेक

धर्म क्या है? मुनि धर्म क्या है? श्रावक धर्म क्या है? प्रश्न अनेक हो सकते हैं। पर धर्म अनेक नहीं होते। धर्म एक ही है। एक होता है। धर्म जानने और धर्म अपनाने के रास्ते पृथक् हो सकते हैं। आचार्यों ने धर्म की परिभाषायें पात्र को देखकर वर्णित की हैं। वे सामने आने वाले व्यक्ति को देख/समझ कर धर्म की व्याख्या करते हैं। एक बार एक हिंसक व्यक्ति ने आचार्य कुन्दकुन्द से पूछा- धर्म क्या है स्वामीजी? आचार्य महाराज उसकी अपेक्षा से उत्तर देते हैं- 'धम्मो दया विसुद्धो' (दया ही धर्म है) 'हिंसा रहिये धम्मे' (हिंसा रहित आचरण धर्म है) मगर जब वही प्रश्न एक मिथ्यात्ववादी करता है तो आचार्यवर्य उत्तर देते हैं- 'दंसण मूलो धम्मो' (श्रद्धा सम्यग्दर्शन धर्म की जड़ है) कहने का अभिप्राय यह कि धर्म एक होने के बाद भी, मुनि और श्रावक को पृथक-पृथक उत्तरों से धर्म का बोध कराया जाता है। पात्रता के अनुसार बतलाया जाता है। फिलहाल इतना याद रखें- आत्मा का स्वभाव धर्म है।

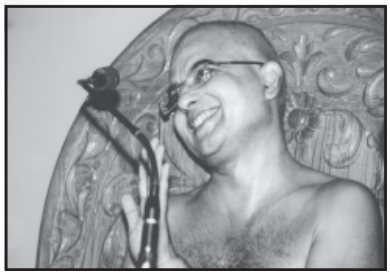

23.

श्रद्धा है धर्म का मूल

हमने धर्म के मायने बदल दिये हैं और धार्मिक होने का स्वांग रच रहे हैं। धर्म को नीचा कर, कर्म को ऊपर कर रहे हैं। कर्मों से जीवन-खाता भर रहे हैं। मंदिर जाते हैं, इससे यह लाभ हुआ कि पड़ोसी और रिश्तेदार टोक नहीं पाते हैं। टोकने के डर से एक ओर धार्मिक कर्म कर रहे हैं, रोज प्रवचन सुनने जा रहे हैं। मंदिर जाने से कुछ लाभ और होने लगे हैं; हम स्वस्थ रहने लगे हैं। यह भी सुना है- जो व्यक्ति रोज पूजा करते हैं, उनके धंधे अच्छे चलते हैं। तब लगा कि आपके कार्य मंदिर, पूजा प्रवचन, वैयावृत्ति से क्यों जुड़ गये हैं, क्योंकि आपके धंधे, व्यवहार और स्वास्थ्य ठीक हो रहे हैं। अरे, बिना श्रद्धा के, तुम्हारे उक्त सभी कार्य व्यर्थ हैं। धर्म और पुण्य उनके खाते में जाते हैं जो श्रद्धा से समर्थ हैं। अतः धर्म करते हुए, मिथ्या मान्यतायें त्यागें, धर्म के बदले कुछ न मांगे। क्योंकि 'श्रद्धा ही धर्म का मूल है' जो यह नहीं समझ पाये यह उनकी भूल है।

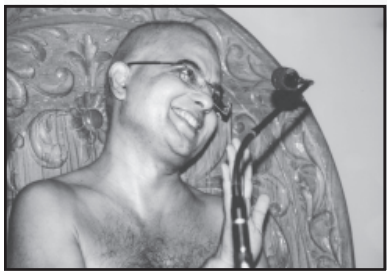

24.

जिनवाणी का आधार जिज्ञासा

जिनवाणी की तुलना मीठे नीर से करें या खारे से। इसे क्षीर सागर से प्राप्त किया गया मानें या लवण सागर से। इन तर्कों की पुष्टि श्रोता की जिज्ञासा पर निर्भर है। जिसे प्यास लगी होती है, उसे ही पानी अच्छा लगता है। जिसे भूख लगी होती है, उसे ही भोजन रस देता है। जो कंठ तक तर हो वह क्या जाने पानी। जिसका पेट भरा हो वह क्यों चाहे दाना-पानी। सुनो, प्यास के बिना पानी की कीमत नहीं; भूख बिना भोजन की नहीं। इसी तरह यदि श्रोता में जिज्ञासा नहीं तो जिनवाणी की कीमत नहीं। अत: मानें कि जिनवाणी न मीठी है, न खारी। न क्षीर सागर से प्राप्त है, न लवण से। वह आपकी जिज्ञासा की कहानी है। भूखे को भोजन और प्यासे को पानी है। अत: संध्या करें, सुप्रभात करें; जिनवाणी आत्मसात् करें। जिनवर-ध्वनि करती कृतकृत्य, जिनवाणी तो है अमृत।

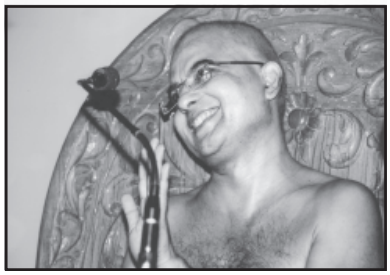

25.

संत का परिवार

तू भक्त है तो संशय क्यों करता है? उस बालक को देख जिसे माता ने झूले पर बैठाया है। वह मन लगाकर खेल रहा है; झूल रहा है। माँ से नहीं पूछता कि शाम को भोजन की क्या व्यवस्था रहेगी। उसे माँ पर भरोसा है। जिस माँ ने खेल और खिलौना दिये हैं, वह भोजन भी देगी। बालक निःकांक्षित है। भक्त को भी भगवान को पूजते-अर्चते हुए निःकांक्षित रहना होगा। अरे, उस युवा मुनि को देख जिसने माँ छोड़ी, भाई छोड़ा, घर छोड़ा। उसे हर गली में भाई मिल रहे हैं, वैयावृत्ति करते हैं। हर गाँव में माताएँ मिलती हैं, आहार देती हैं। हर नगर में घर मिलते हैं, जब मकान मालिक आदर से बतलाते हैं- यह आपका ही घर है। हर तरफ उसके घर हैं। हर तरफ कुटुम्बी लोग। तब विश्वास है- निःकांक्षित जनों के लिए ही लिखा था- विचारकों ने- 'वसुधैव कुटुम्बकम्'।

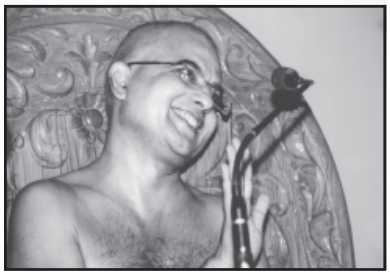

26.

मोह शैय्या के आदी हम

हम, सभी-जन मोही हैं। किसी को पत्नी से मोह है, किसी को संतान से। किसी को सर्विस से तो किसी को धंधा-दुकान से। वस्त्र और आभूषणों का मोह, घर-मकान-खेत-खलिहानों का मोह। उद्योग-फैक्टरी-कारखानों का मोह। हम जीवन भर किसी न किसी मोह के प्रभाव में रहे और अधिक पा लेने के बहाव में रहे। कहें, हम मोह की गोद में सोते रहे। दो के चार बनाने वाले बीज बोते रहे। यों कभी साथी ने, कभी गुरु ने, कभी जिनवाणी ने जगाया, पर हमने उनका एक शब्द भी न सुन पाया। मोह के पर्दे में आयु का पल-पल बिताते रहे, "सब कुछ मेरा है" की धुन बजाते रहे। मगर जो श्रावक मोह-निद्रा त्याग देता है, वह भ्रम को भगा देता है। वह त्याग, दान और आकिंचन्य का मार्ग चुनता है, सांसारिक संग्रह को नहीं, 'आत्मा की उपलब्धियों' को गिनता है।

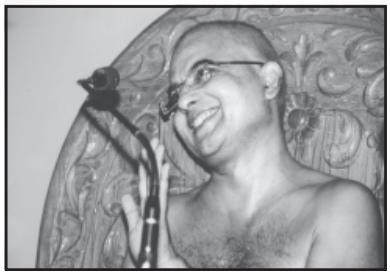

27.

भक्ति और तत्परता

साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व की बात है। अतिशय क्षेत्र महावीर जी में एक ग्वाले को मूर्ति प्राप्त हुई थी। टीले से उठाकर मंदिर में विराजमान करते समय ग्वाले की भक्ति काम आई थी। ग्यारह सौ साल पहले की घटना है, श्रवणबेलगोला में एक बुढ़िया-माँ गुल्लिका-के पात्र से ही पूर्ण-अभिषेक हो सका था। करीब छब्बीस सौ साल पूर्व का प्रसंग है- एक मेंढ़क मुँह में कमल-पाँखुड़ी दबा कर, भगवान महावीर के समवशरण को जा रहा था, रास्ते में अचानक हाथी के पैर से कुचल गया, फलतः शीघ्र ही देव बनकर समवशरण में पहुँच सका था। वे सब भक्ति से प्रमुदित थे। जैसे एक बछड़ा गाय को देखकर हर्ष से उछलने लगता है। जैसे मयूर बादलों को देखकर नृत्य करने लगता है। मगर आज का भक्त बेजां है। समझ में नहीं आता वह दर्शन करने आया है या किसी ने बलात् भेजा है। धन्य है- वे आचार्य जो कहते हैं- हे भगवन्! हम नहीं, हमारी अलाली सदा सोती रहे और हमें जिनेन्द्र-भक्ति प्राप्त होती रहे।

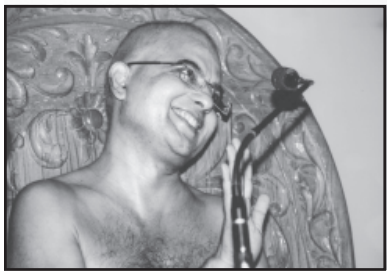

28.

आत्मा का अंधकार

हमें जो दिख रहा है, वास्तव में उसे हम जानते नहीं है। हम एक शरीर देख रहे हैं, पर वास्तव में वह एक आकार मात्र है, एक पिंजरा मात्र है जो 'जरा' के जरा से धक्के से टूट जाता है। उस पिंजरे में समाई हुई चेतना हमें दिखती ही नहीं। कहें, हमने शरीर देखा है, आत्मा नहीं। या हम शरीर और आत्मा को एक मानते रहे हैं। ऐसा करने से हम बहिरात्मा बन गये। बहिरात्मा जो शरीर को 'अपना' मानता है। फिर कुटुम्ब, परिवार, दुकान, मकान को। हमारी हर स्थिति बहिरात्मपने में ही व्यतीत होती रही। फलतः हम धर्म के पास तक तो गये, परन्तु धर्म का द्वार न खोल पाये। शरीर के मिथ्यात्व में जीते रहे, आत्मा के उजाले तक न पहुँच पाये। सुनो बाहर का अंधकार लकड़ी/लाठी के सहारे पार किया जा सकता है। परंतु आत्मा का अंधकार पार करने के लिए देव, शास्त्र और गुरु ही सारभूत है। अतः मिथ्यात्व की भंवर से बचना है और श्रद्धा के पथ पर बढ़ना है तो शरीर से पहले आत्मा को पहिचानों। आत्मा के उजास को जानो।

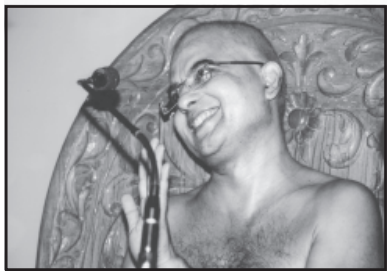

29.

अदृश्य-साँकले

हम एक साँकल से बंधे थे। हमें पता ही न था। हम जिंदगी भर श्रम करते रहे। साँकल खोली नहीं। अतः श्रम करते-करते थक गये और एक दिन उसी साँकल में बंधे-बंधे मर गये। तब लगा हम वही नाविक हैं जो बाजार जाने के लिए दौड़कर नाव पर हो जाता है सवार। तेज गति से चलाता है पतवार। रात भर चलाता है। सुबह देखता है। जहाँ का तहाँ है। तब याद आया- नाव को साँकल से छोड़ना भूल गया था। नाविक को ज्ञान हुआ- लक्ष्य तक जाना है तो मोह और और लोभादि की साँकलें खोलनी होंगी। अन्यथा हमारी नाव किनारे पर धरी रहेगी। सांकल नाव का और कर्म श्रावक का बंधन है। हमें बंधन मुक्त होना जरूरी है। मगर बंधन हमारी मजबूरी है। जिस दिन हम आत्म ज्ञान का प्रकाश ले सदाचार के पथ पर कूद जावेंगे। हमारे बंधन आपो आप टूट जावेंगे।

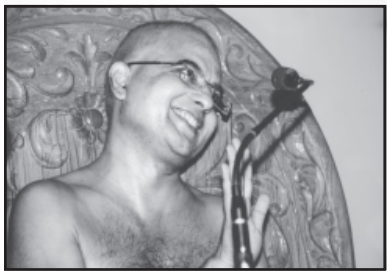

30.

निवास कहाँ-आत्मा जहाँ

जब सैनिक लाम पर होता है तब उसका कृपाण हर क्षण उसके हाथ में रहता है। इसी तरह आदमी जब धर्म-पथ पर होता है हर समय अपनी आत्मा के पास रहता है। कभी मंदिर जाकर प्रभु-दर्शन करता है तो मनोयोग से। आत्मा हर क्षण भगवान के प्रति समर्पित रहती है। कभी वह व्यक्ति बीमार होता है। अस्पताल में भरती होना पड़ता है। दर्शन-पूजन नहीं कर पाता मंदिर जाकर, परंतु उसकी भावनायें भगवानमयि बनी रहती हैं। मन चिंतन में लगा रहता है। बस यही तो धर्म है। इससे पृथक् धर्म का क्या स्वरूप हो सकता है, खुद विचार करें। एक शिष्य ने गुरु से पूछा- प्रभु, जैन धर्म क्या है? गुरुवर ने कृपा की; संकेत में बतलाया- शक्ति को न छुपा कर, साधना करना और परिणामों में निर्मलता बनाये रखना, जैन धर्म है।

शिष्य समझ गया- यही तो आत्मा के पास रहना है।

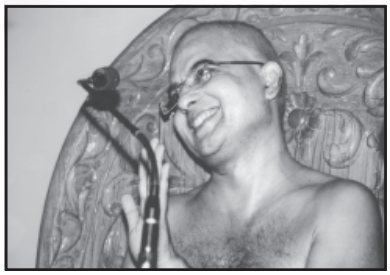

31.

आवाज की कठोरता

आजकल भगवान का नाम कुछ इस तरह उचारते हैं, जैसे पिताजी अपने बेटे को पुकारते हैं। अरे जब तुम्हारी कर्कश आवाज दूसरे कमरे में खड़ा पुत्र नहीं सुनना चाहता तो भगवान क्यों सुनेंगे? कभी इस बिन्दु पर गुनेंगे? गुनो; अवश्य गुनो और अपने शब्द अपने कान से सुनो। शब्द जिनमें न आदर है, न वात्सल्य; कैसे हरेंगे शल्य। हमारी संस्कृति में तो छोटा बच्चा भी पिता के नाम को आदर से लेता है। और पिता भी एक बार में सुन लेता था। अत: शब्दों में करुणा घोलो। शब्दों को मिश्री से तौल कर बोलो। सच, धर्म का मर्म जब जीवन में घुलने लगता है, पुत्र या पिता ही नहीं, भगवान भी सुनने लगता है। यह पृथक् बात है कि आगम का भगवान न सुनता है, न बोलता है, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है। मगर मीठा शब्द सुखी जीवन का सृष्टा है।

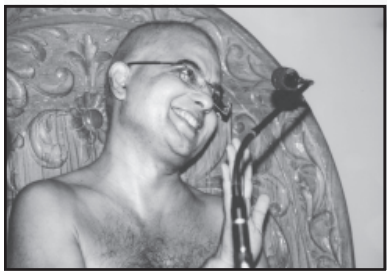

32.

देव पूजा से दान पूजा तक

देव पूजा से भी बड़ी है- दान पूजा। उसके बाद ही, करें काम दूजा। फिर सोचें- क्यों बड़ी कही गई है- दान पूजा? उत्तर सरल है- आगम में 'दान तीर्थ' की चर्चा पहले आती है; धर्म तीर्थ की बाद में। अस्तु। दान तीर्थ की उत्पत्ति महाराज श्रेयांस द्वारा अक्षय-तृतीया के दिन भगवान आदिनाथ को दिये गये आहार से हुई थी। केवलज्ञानी, तीर्थंकर आदि के उपदेश की बात बाद में हुई थी। वैसे भी विचार करें तो पायेंगे कि आपातकाल में कुछ समय तक पूजा के बिना रहा जा सकता है। पूजा न कर पाने का क्षोभ सहा जा सकता है। परन्तु दान के बिना न साधक रह पाता है, न उपासक। पेट की ज्वाला बना देती है उन्हें- अश्रावक। अरे, जब साधु नहीं रह जायेंगे तो पूजा की विधि कौन बतलायेंगे? कौन देव, शास्त्र, गुरु की महिमा समझायेंगे? हमारा यह तर्क है समाधान का दाता। कि यदि राजा श्रेयांस आहार न देते तो केवलज्ञानी का उपदेश कैसे मिल पाता? अतः मस्तक में यही बिन्दु सूझा। कि देव पूजा से बड़ी है- दान पूजा।

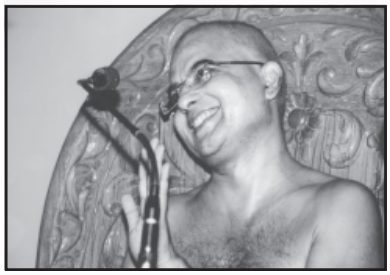

33.

दान कहाँ ?

दान-दान में फर्क है। दान से स्वर्ग और दान से नर्क है। आगम में दान को मोक्ष का कारण कहा है। दानियों से ही स्वर्ग-क्षेत्र लहा है। क्योंकि दान संतों और श्रावकों को मोक्ष की स्थिति साथ-साथ बनाता है। सच, आहार दान देने/दिलाने या देखने मात्र से श्रावक मोक्ष पथगामी बन जाता है। परंतु ध्यान रखें- जिन्होंने सुपात्रों को दान दिया है। उन्होंने ही स्वर्ग-पथ प्राप्त किया है। कुपात्र वाला भव-भव भटका है। धर्म करते हुए भी राह में अटका है। अरे; तुम जैसे वृक्ष पर पानी बहाओंगे। बदले में वैसे ही फल पाओंगे। इस सूत्र का समझिये आयाम। यह कि करेला वाले को करेला; आम वाले को आम।

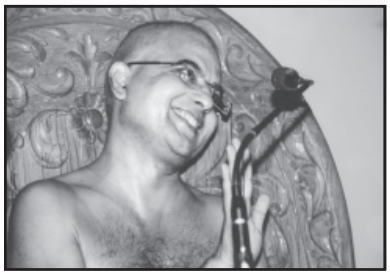

34.

शुद्धियों की आवश्यकता

द्रव्य-शुद्धि धर्म है। भाव-शुद्धि धर्म है। जहाँ दोनों शुद्धियाँ एक साथ होती हैं, वह जैन धर्म है। भगवान महावीर करते हैं इसका विवेचन। समझाते हैं जैन-दर्शन। कि द्रव्य की शुद्धि की सीमित समय-सीमा है; सीमित है स्थान। परंतु भाव शुद्धि सुदीर्घ-समय तक सम्भालती है ध्यान। द्रव्य-शुद्धि प्रकारांतर से है- नापी या तौली जा सकती है। किन्तु भाव-शुद्धि नापी-तौली नहीं जा सकती। कभी; द्रव्य शुद्धि के बिना काम चल सकता है सही। किंतु भाव शुद्धि के बिना नहीं। सम्भवत: द्रव्य शुद्धि के बिना जाप, ध्यान या आहार-दान चल सकता है। परंतु भाव शुद्धि के बिना नहीं। द्रव्य-रहित, भाव पूजा से शायद फल प्राप्त हो सकता है। परंतु भाव-रहित 'द्रव्य-पूजा' से नहीं। अत: धर्म-क्षेत्र में ध्यान रखें श्रावक। धर्म-फल तक पहुँचने- दोनों शुद्धियाँ हैं आवश्यक।

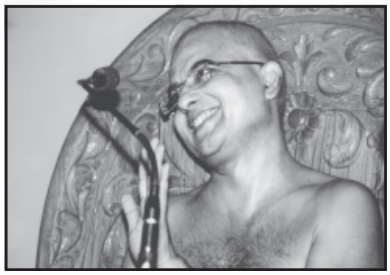

35.

लक्ष्य की प्यास

हँसना या रोना साधक का लक्ष्य नहीं है। उसका लक्ष्य है वैराग्य। हर्ष मनाने वाले लोग अट्टहास के पहाड़ खड़े कर देते हैं। और दु:ख मनाने वाले सागर आँसुओं से भर देते हैं। तभी तो भगवान आदिनाथ ने कहा था- प्राणी के जन्म के समय मुस्कान संग्रह करें तो आकाश भर जावेगा और मरण के समय बहाए गए आँसुओं से समुद्र भर जायेगा। सच, हम हर पर्याय में यही-यही करते रहे हैं। आकाश पाताल भरते रहे हैं। मगर जब साधक के भीतर करुणा जन्म ले लेती है और समता प्रवेश पा जाती है। तब उसे बिछोह की वेदना और मिलन के रस छू नहीं पाते। वह योगवीर योगीश्वर की साधना करते- करते स्वत: योगेन्द्र हो जाता है धनुर्विद्या के विद्यार्थी अर्जुन की तरह लक्ष्येन्द्र हो जाता है, जिसका लक्ष्य वृक्ष, वातावरण या डगाल आदि नहीं थी, उसे केवल पक्षी की आँख दिख रही थी। मन प्रमाद शून्य था यहीं से शुरु होता है वैराग्य पथ। यह प्रथम बात है कि वैरागी का लक्ष्य केवल मोक्ष होता है, न उससे अधिक न कम। साधना चलती है सतत्। भावना बनाए रहता है- अक्षत्।

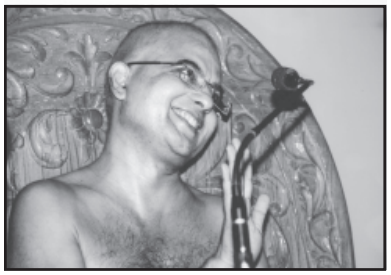

36.

आत्मा है उत्तरों का समुद्र

मैने एक से पूछा। अनेक से पूछा। किसी के उत्तर से सन्तोष न हुआ। जबकि प्रश्न एक ही था और एक ही रूप में था। वह था- जैन धर्म क्या है? एक ने कहा था। दर्शन की प्रतीति जैन धर्म है। दूसरे ने कहा था यह तो एक संप्रदाय है। तीसरे ने बतलाया पानी छानकर पीना जैन धर्म है। चौथा कह रहा था रात्रि भोजन का त्याग जैन धर्म है। ऐसे-ऐसे सैंकड़ों वाक्य मुझे सुनने मिले। फिर भी मुझे संतुष्टि नहीं हुई। रात्रि, मुझे स्वप्न में भगवान महावीर दिखे, उनका समवशरण दिखा अनेक विद्वान प्रश्न कर रहे थे बदले में उत्तरों की निर्झरणी में स्नान कर रहे थे, मैं भी श्रद्धा पूर्वक उनके चरणों में और द्रव्य के मानिंद अपना प्रश्न धर दिया (जैन धर्म क्या है) उनके आभा मंडल से आवाज गूंजी- अंतरात्मा के विचार और उनके परिणाम जैन धर्म है मुझे याद आया- भावना भवनाशिनी- भावना भव वर्धिनी आँख खुली तो पाया उत्तर मेरे ही पास था। पर देख समझ नहीं पाया था। तब लगा महावीर का स्वप्न याद कराने आया था।

उपसर्ग विजेता प.पू. गणाचार्य श्री विराग सागर जी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्या पीठ भिण्ड द्वारा प्रकाशित साहित्य

क्र.	सत् साहित्य	
A	**संस्कृत टीका साहित्य**	
	1. वारसाणुवेक्खा (सर्वोदयी टीका संस्कृत)	150/-
B	**शोधपूर्ण साहित्य**	
	2. शुद्धोपयोग	25/-
	3. सम्यग्दर्शन	25/-
	4. आगम चक्खू साहू	20/-
	5. सल्लेखना से समाधि	30/-
	6. संत साधना के प्रेरक प्रसंग	15/-
	7. परम दिगम्बर जैन मुनि (हिन्दी, मराठी, तमिल, कन्नड़, इंग्लिश)	40/-
	8. सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म	30/-
	9. तीर्थंकर दिव्य दर्शन	30/-
	10. तीर्थंकर दर्शन	30/-
	11. व्यसन विचार (हिन्दी, मराठी, इंग्लिश)	25/-
	12. फूल नहीं हैं कांटे	
	13. संस्कार सूरभि	15/-
	14. जिनेन्द्र दर्शन जिनेन्द्र पूजन	10/-
	15. आध्यात्मिक शंका-समाधान	30/-
	16. आध्यात्मिक तत्व-चर्चा	15/-
C	**चिंतन साहित्य**	
	17. चैतन्य चिंतन भाग-1,2,3	15/-
D	**बालकोपयोगी साहित्य**	
	18. बाल विज्ञान भाग-1,2,3 (हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड)	10/-
	19. बाल विज्ञान भाग-4	10/-
	20. कर्म विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, इंग्लिश)	10/-
	21. कर्म विज्ञान भाग-2,3	10/-
E	**कथा साहित्य**	
	22. नैतिक कथा मंजूषा भाग-1,2,3	15/-

F अनुवाद साहित्य

23. वारसाणुवेक्खा
24. परमरत्नार्चना संग्रह 20/-
25. सामायिक पाठ 10/-

G गद्य साहित्य

26. भावों के विशुद्ध क्षण 15/-
27. मुक्तकाञ्जलि भाग-1,2
28. नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा

H संकलित/सम्पादित साहित्य

29. साधना से समाधि 20/-
30. विमल नित्य पाठावली 25/-
31. आराधना 10/-
32. सुभाषित सहस्रं 40/-
33. आप्त अर्चना
34. मानतुंग की अमरभक्ति (सचित्र भक्तामर)
35. साधना 10/-
36. अनुप्रेक्षा 10/-
37. जिनागम दीप 251/-
38. सम्मेद शिखर विधान
39. चारित्र शुद्धि व्रत 25/-
40. साधना के सोपान
41. करुणामूर्ति संत
42. तपस्वी सम्राट
43. यज्ञोपवीत विधि

I एकांकी/नाटक साहित्य

44. सत्य मित्र-सत्य दृष्टि
45. प्रद्युम्न हरण

J आचार्यश्री के व्यक्तित्व पर आधारित साहित्य

46. विरागाभिवंदन अभिनंदन
47. निस्पृही संत भाग-1,2 60/-
48. विराग सेतु (महाकाव्य) 100/-
49. संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागरजी 65/-
50. कमल से महाकमल
51. घटनायें ये जीवन की 80/-
52. दिगम्बरत्व के चितेरे 150/-

53.	विराग सिंधु की उर्मिया	15/-
54.	विराग वाटिका	41/-
55.	भक्ति की झंकार	25/-

K प्रवचन साहित्य

56.	धर्म पीयूष	30/-
57.	ऐसे चलो मिलेगी राह	40/-
58.	दूर नहीं है मंजिल	30/-
59.	उड़ रे पंछी धीरे-धीरे	
60.	तीर्थंकर वर्धमान	15/-
61.	पहले देव पूजा फिर काम दूजा	25/-
62.	तीर्थंकर ऐसे बनो	85/-
63.	तट की ओर	
64.	सिर्फ दो प्रवचन	10/-
65.	इष्टोपदेश	
66.	मानतुंग की अमर भक्ति	150/-
67.	कल्याणक महोत्सव	20/-
68.	दान तीर्थ	20/-
69.	धर्म के दश सोपान	20/-
70.	जीवों पर दया करो- शुद्ध शाकाहार करों	20/-
71.	बुराईयाँ ही जेल-अच्छाईयाँ ही मुक्ति	10/-
72.	प्रवचन वर्षा	15/-
73.	कर्तव्य मेव कर्तव्यं	20/-
74.	श्रद्धा प्रसून	20/-
75.	मोक्ष की राहें	
76.	विरागामृत	
77.	समाधि तंत्र	
78.	समयोचित् शिक्षायें भाग-1,2,3	20/-
79.	विराग मंथन	5/-
80.	रजत पुष्प	51/-
81.	कहानी सबसे सुहानी	30/-
82.	अक्षय निधि	10/-
83.	संस्कार की लहरें	10/-
84.	चलो चले प्रभु दर्शन को	20/-
85.	आध्यात्मिक पर्व (दशलक्षण पर्व)	30/-

L प्रवचन

86. घर-घर की कहानी
87. पद्मनंदि पञ्चविंशतिः अध्याय-1 धर्मोपदेशामृतम् 150/-
88. पद्मनंदि पञ्चविंशतिः अध्याय-2 दानोपदेशम् 150/-
89. पद्मनंदि पञ्चविंशतिः अध्याय-3 अनित्यपञ्चाशत् 150/-
90. पद्मनंदि पञ्चविंशतिः अध्याय-4-5 एकत्व सप्तति तथा यतिभावनाष्टकम् 150/-
91. पद्मनंदि पञ्चविंशतिः अध्याय-6 उपासक संस्कारः 150/-
92. पद्मनंदि पञ्चविंशतिः अध्याय-7 देशव्रतोद्योतनम् 150/-
93. मेरी भावना प्रवचन
94. फॉर यूथ प्रोगेस
95. आचार्य विराग सागर जी महाराज साहित्य परिचय

रू प्राप्ति स्थल रू

1ण श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ
चैत्यातय मंदिर, बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

2ण आचार्य श्री विराग सागर विद्यापीठ (बी.एड.कॉलेज)
पुष्प विहार कॉलोनी, बीना-470113
जिला-सागर (म.प्र.)
सम्पर्क सूत्र : प्रदीप शाह मो. 9425135816

3ण विराग फाउण्डेशन
C/o श्री अरुण कोटड़िया
II-A, विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा
अहमदाबाद - 380018 (गुज.)
सम्पर्क सूत्र : अरुण कोटड़िया मो. 09825900124

4ण श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह
12-B, वर्धमान सोसायटी, डेरी रोड़,
मेहसाना-2 (गुज.)
सम्पर्क सूत्र : श्री भूपेन्द्र शाह मो. 09898494914, 9429452020